

कर्तव्य पथ : नव-उपनिवेशवाद की ओर एक और छलांग

प्रेम सिंह

पहले ही स्पष्ट कर दें कि जब राष्ट्रपति भवन से इंडिया गेट तक की सड़क को राजपथ नाम दिया गया तो वह किंग्स-वे का अनुवाद नहीं था। जैसा कि जनपथ पुराने नाम क्वीन्स-वे का अनुवाद नहीं था। राजपथ नामकरण में स्वतंत्र और संप्रभु बने भारत की लोकतांत्रिक राजसत्ता का प्रतीकार्थ भरा गया था। 26 जनवरी 1950 के बाद से भारत की सैन्य-शक्ति और सांस्कृतिक विविधता का रंगारंग प्रदर्शन राजपथ पर होता रहा। इस तरह राजपथ के साथ जुड़ा प्रतीकार्थ जनमानस में उत्तरोत्तर मजबूत होता चला गया। अगर कोई व्यक्ति या समूह यह मानता भी रहा हो कि राजपथ उपनिवेशवादी दौर के नाम किंग्स-वे का अनुवाद है और उस नाते उपनिवेशवादी मानसिकता का द्योतक है, भारत के विशाल जनमानस के लिए राजपथ का अर्थ स्वतंत्र एवं संप्रभु भारत की लोकतांत्रिक राजसत्ता का पथ ही बना रहा है। लिहाजा, प्रधानमंत्री का यह कहना कि राजपथ का नाम कर्तव्य पथ रख कर उन्होंने उपनिवेशवादी मानसिकता से मुक्ति दिलाई है, महज भाषणबाज़ी है।

इंडिया गेट के पूर्व में ग्रांड कैनोपी के नीचे स्थापित की गई नेताजी सुभाषचंद्र बोस की प्रतिमा का अनावरण करते समय भी प्रधानमंत्री ने उन्हें इतिहास में उनकी सही जगह दिलाने का दावा किया। उनका यह दावा भी खोखला ही कहा जाएगा। सारी दुनिया में लंबे समय से प्रतीकों और प्रतीक-पुरुषों की राजनीति होती रही है। भारत में कांग्रेस ने भी वह की है, और प्रादेशिक स्तर पर क्षेत्रीय क्षत्रप भी कई रूपों में करते रहे हैं। अलबत्ता, नवउदारवादी दौर में यह राजनीति कुछ ज्यादा ही तेज हुई है। आरएसएस/भाजपा की प्रतीकों की राजनीति में नया केवल यह है कि वह उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष में हिस्सा लिए बगैर उस संघर्ष से जुड़े प्रतीकों और प्रतीक-पुरुषों की राजनीति करती है। इस राजनीति के तहत वह किसी को नीचे गिराती है, किसी को ऊपर उठाती है। अपनी इस कवायद का खोखलापन ढंकने के लिए उसे इतिहास और तर्कों के परे जाकर राजनीतिक सत्ता का सहारा लेना पड़ता है। सत्ता के सहारे शोर मचाने और प्रतीकों की उठा-पटक करने से न इतिहास बनता है, न इतिहास लिखा जाता है।

प्राचीन और मध्यकालीन भारत एवं स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास-लेखन में आरएसएस/भाजपा को सब कुछ गलत लगता है। होना यह चाहिए कि उसके विद्वान इतिहास-लेखन के कठोर अनुशासन का पालन करते हुए 'ठीक इतिहास' लिखें। आधुनिक विश्व में शायद इतिहास-लेखन ही सबसे कठिन अकादमिक साधना का क्षेत्र है। प्रत्येक विषय की तरह इतिहास-लेखन की भी कड़े परीक्षण

के बाद स्वीकृत की गई पद्धतियां और कसौटियां निर्धारित होती हैं। उन्हें सीखे, समझो और पालन किए बिना कोई इतिहासकार अथवा किसी अन्य विषय का विद्वान नहीं बन सकता। यह कठिन मार्ग छोड़ कर आरएसएस/भाजपा के नेता इतिहास लिखने वाले लेफ्ट विद्वानों को खरी-खोटी सुनाने में और पाठ्य-पुस्तकों के साथ छेड़-खानी करने में लग जाते हैं। गोया, भारत और दुनिया में केवल संघी और कम्युनिस्ट ही बसते हों; और कम्युनिस्टों के अलावा किन्हीं अन्य धाराओं के विद्वानों ने इतिहास अथवा किसी अन्य विषय में कोई काम ही नहीं किया हो। जाहिर है, आरएसएस/भाजपा की तरफ से की जाने वाली यह एक निरर्थक बहस हो जाती है, जो जान के मार्ग को अवरुद्ध करती है। भारत और दुनिया में वामपंथी विद्वानों का इतिहास-लेखन और अन्य विषयों में बड़ा योगदान है। यह उनकी कठोर साधना का फल है। उनके काम से गुजरे और उनसे सीखे बिना किसी अन्य धारा का विद्वान आगे नहीं बढ़ सकता। जिस तरह मार्क्सवादी धारा का विद्वान अन्य धाराओं के विद्वानों के काम की उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ सकता।

लेकिन ठहरी हुई मानसिकता के लोग सीखने के बजाए झगड़ा करने के आदी बन जाते हैं। इससे एक आधुनिक मनुष्य के के रूप में उनका संवर्द्धन नहीं हो पाता, और उनके व्यक्तित्व को नुकसान पहुंचता है। आरएसएस/भाजपा की वही स्थिती बनी हुई है। पश्चिमी जगत में आविष्कृत डिजिटल उपकरणों को अंधाधुंध अपनाने से कोई आधुनिक नहीं हो सकता। उसके लिए प्राकृतिक विज्ञानों के दर्शन को अपनाना होता है। यह अकारण नहीं है कि ठहरी हुई मानसिकता के लोग डिजिटल उपकरणों से लैस होकर अपने को आधुनिक दिखाने की कोशिश करते हैं।

औपनिवेशिक मानसिकता और उससे मुक्ति का सवाल अत्यंत जटिल और गंभीर सवाल है। पूर्व-उपनिवेशित देशों के लिए भी, और उपनिवेशवादी देशों के लिए भी। उपनिवेशवाद, उत्तर-उपनिवेशवाद, नव-उपनिवेशवाद पर भारी-भरकम साहित्य और बहसें उपलब्ध हैं। भारत समेत विश्व के कई महत्वपूर्ण नेताओं ने भी इस विषय पर गंभीर चिंतन किया है। राजनीति के क्षेत्र में एक सच्चा स्टेट्समैन उपनिवेशवादी मानसिकता और उससे मुक्ति के गंभीर प्रश्न पर सस्ती भाषणबाजी नहीं करेगा। उपनिवेशवाद की गिरफ्त से आजाद होने वाले देशों के सामने पिछले करीब तीन दशकों से नव-उपनिवेशवाद का खतरा दरपेश है। भारत भी उस खतरे का सामना कर रहा है। लेकिन, दुर्भाग्य से, यहां का शासक-वर्ग देश की स्वतंत्रता और संप्रभुता के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के बजाय देश को नव-उपनिवेशवादी शिकंजे के हवाले करता जा रहा है। ऐसा करते वक्त शासक-वर्ग मुख्यतः स्वतंत्रता सेनानियों और राष्ट्रीय ध्वज को राजनैतिक इस्तेमाल की वस्तु में घटित कर देता है।

वर्तमान सरकार पहले सरदार वल्लभभाई पटेल और अब नेताजी सुभाषचंद्र बोस को लेकर यहीं कर रही है। सरकार को न पटेल की राष्ट्रीय एकता और सांप्रदायिक सौहार्द के लिए निभाई गई भूमिका

से कोई सरोकार है, न नेताजी के समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष विचारों से। वह नए अथवा निगम-भारत को सांप्रदायिक भारत बना कर रखना चाहती है, जिसे वह 'हिंदू-राष्ट्र' का नाम देती है। नेताजी जी की बेटी ने प्रधानमंत्री को लिखे पत्र में लिखा है, "... उन्होंने निश्चय-पूर्वक सांप्रदायिक सद्भाव, भारतीय एकता के साथ स्त्रियों एवं दबे-कुचले लोगों की मुक्ति के लक्ष्य को आगे रखा।" प्रधानमंत्री नेताजी की प्रतिमा का अनावरण करते वक्त यह छिपा लेते हैं कि यह एक अंतःकालीन व्यवस्था (स्टॉप गेप अरेंजमेंट) है। अभी नेताजी के बराबर में वीडी सावरकर की मूर्ति लगना बाकी है। उसके साथ भले ही भगत सिंह की मूर्ति भी लगानी पड़े। लोगों को याद होगा कि अगस्त 2019 में दिल्ली विश्वविद्यालय में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के नेताओं ने चोरी-छिपे सावरकर-नेताजी-भगत सिंह की त्रिमूर्ति स्थापित कर दी थी। मैंने तब कहा था कि यह सिलसिला इसी घटना तक नहीं रुकेगा।

दरअसल, यह एक दो-धारा मनोवैज्ञानिक युद्ध (साइकॉलॉजिकल वारफेयर) है: जनता, खासकर युवा पीढ़ी का नव-उपनिवेशवादी शिकंजे की तरफ से ध्यान हटाना; और उपनिवेशवाद के खिलाफ जंग लड़ने वाले स्वतंत्रता सेनानियों और राष्ट्रीय ध्वज को नव-उपनिवेशवादी हमाम में शामिल करना। शासक-वर्ग और मीडिया की इस सम्मिलित कवायद को दिन-रात धुआंधार प्रचार के द्वारा राष्ट्रभक्ति सिद्ध किया जाता है। लोग उस प्रचार में बहते हैं और तालियां बजाते हैं। तीन दशकों की कारपोरेट राजनीति के तहत हुए अराजनीतिकरण की कोख से कई पीढ़ियों का जन्म हो चुका है। उन्हें इस परिघटना पर ऐतराज नहीं होता कि कारपोरेट राजनीति के तहत राष्ट्रीय संपत्तियों को बेचा जाता है, संवैधानिक संस्थाओं को नष्ट किया जाता है, सांप्रदायिक आधार पर शहरों, सड़कों, इमारतों के नामों को बदला जाता है, और इस सबका उत्सव मनाया जाता है।

निष्कर्ष में कह सकते हैं कि नए भारत का नया सौंदर्यपूर्ण कर्तव्य पथ लोगों को बताएगा कि शासक-वर्ग की तरह उनका कर्तव्य भी नव-उपनिवेशवाद की सेवा में समर्पित होना है!

(समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फ्रेलो हैं।)